अकृत्रिम चैत्यालय पूजा

जगत में ऐसे मन्दिर भी है। जो किसी मनुष्य द्वारा बनाये हुए नहीं है, अनादि काल से चले आ रहे हैं। उनको अकृत्रिम चैत्यालय कहते हैं। इन चैत्यालयों में अरहन्त भगवान की मनोहर प्रतिमायें विराजमान हैं। किसी तीर्थंकर विशेष की प्रतिमायें नहीं है।

१/९
पीले चावल/लौंग
क्षेपण करना

आठ क्रोड़ अरु छप्पन लाख, सहस सत्यानव चतुर्दश भाख।
जोड़ इक्यासी जिनवर थान, तीन लोक आह्वान करान॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र चतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिन चैत्यालयानि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

झारी से जल

क्षीरोदधिनीर उज्जवल क्षीरं, छान सुचीरं भरि झारि।
अति मधुर लखावन, परम सु पावन, तृषा बुझावन गुण भारी॥
वसुकोटि सु छप्पन लाख सत्तानव, सहस चारशत इक्यासी।
जिनगेह अकीर्तिम तिहुंजग भीतर, पूजत पद ले अविनाशी॥

ॐ ह्रीं तीन लोक सम्बन्धी आठ क्रोड़ि छप्पन लाख सत्यानवे हजार चार सौ इक्यासी अकृत्रिम जिन चैत्यालयेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन जल

मलयागिरि पावन, चन्दन बावन, ताप बुझावन घसि लीनो।
धरि कनक कटोरी, द्वैकरजोरी, तुमपद ओरी, चित दीनो॥ वसु..॥

ॐ ह्रीं तीन लोक सम्बन्धी आठ क्रोड़ि छप्पन लाख सत्यानवे हजार चार सौ इक्यासी अकृतित्रम जिन चैत्यालयेभ्यो संसार-ताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुभाँति अनोखे, तन्दुल चोखे, लखि निरदोखे, हम लीने।
धरि कंचनथाली, तुम गुणमाली, पुंज विशाली कर दीने॥
वसुकोटि सु छप्पन लाख सत्तानव, सहस चारशत इक्यासी॥
जिनगेह अकीर्तिम तिहुंजग भीतर, पूजत पद ले अविनाशी॥

ॐ ह्रीं तीन लोक सम्बन्धी आठ क्रोड़ि छप्पन लाख सत्यानवे हजार चार सौ इक्यासी अकृत्रिम जिन चैत्यालयेभ्यो अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ पुष्प सुजाती हैं, बहुभाँति, अलि लिपटाती लेय वरं।
धरि कनक रकेबी, करगह लेवी, तुम पद जुगकी भेट धरं॥ वसु..॥

ॐ ह्रीं तीन लोक सम्बन्धी आठ क्रोड़ि छप्पन लाख सत्यानवे हजार चार सौ इक्यासी अकृत्रिम जिन चैत्यालयेभ्यो काम वाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

खुरमा जु गिंदोड़ा, बरफी पेड़ा, घेवर मोदक भरि थारी।
विधिपूर्वक कीने, घृतपय भीने, खण्ड मैं लीने, सुखकारी॥ वसु..॥

ॐ ह्रीं तीन लोक सम्बन्धी आठ क्रोड़ि छप्पन लाख सत्यानवे हजार चार सौ इक्यासी अकृत्रिम जिन चैत्यालयेभ्यो क्षुधारोग-विनाशनाय नेवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यात महातम छाय रह्यो मम, निजभव परणति नहिं सूझे।
इहकारण पाके दीप सजाकै, थाल धराकै, हम पूजे॥ वसु..॥

ॐ ह्रीं तीन लोक सम्बन्धी आठ क्रोड़ि छप्पन लाख सत्यानवे हजार चार सौ इक्यासी अकृत्रिम जिन चैत्यालयेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगन्ध कुटाकै, धूप बनाकै, निजकर लेकर, धरि ज्वाला।
तसु धूप उड़ाई, दशदिश छाई, बहु महकाई, अति आला॥

ॐ ह्रीं तीन लोक सम्बन्धी आठ क्रोड़ि छप्पन लाख सत्यानवे हजार चार सौ इक्यासी अकृत्रिम जिन चैत्यालयेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम छुआरे, श्रीफल धारे, पिस्ता प्यारे, द्राखवरं।
इन आदि अनोखे, लखि निरदोखे, थाल पजोखे, भेटधरं॥

ॐ ह्रीं तीन लोक सम्बन्धी आठ क्रोड़ि छप्पन लाख सत्यानवे हजार चार सौ इक्यासी अकृत्रिम जिन चैत्यालयेभ्यो मोक्षफल प्राप्ताये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ

जल चंदन तंदुल कुसुमरु नेवज, दीप धूप फल थाल रचौं।
जयघोष कराऊँ बीन बजाऊँ, अर्घ चढ़ाऊँ, खूब नचौं॥ वसु..॥

ॐ ह्रीं तीन लोक सम्बन्धी आठ क्रोड़ि छप्पन लाख सत्यानवे हजार चार सौ इक्यासी अकृत्रिम जिन चैत्यालयेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येक अर्घ चौपाई

अधोलोक जिन आगमसाख, सात क्रोड़ि अरु बहत्तरि लाख।
श्रीजिनभवन महा छवि देई, ते सब पूजौं वसुविधि लेइ॥

ॐ ह्रीं अधोलोकसंबंधी सात कोटि बहत्तर लाख श्री अकृत्रिम जिन चैत्यालयेभ्योऽर्घं नि. स्वाहा।

मध्यलोक जिन-मन्दिर ठाठ, साढ़े चार शतक अरु आठ।
ते सब पूजौं अर्घ चढ़ाय, मनवचतन त्रयजोग मिलाय॥

ॐ ह्रीं मध्यलोक सम्बन्धी चार सौ अठावन श्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अडिल्ल छन्द

ऊर्ध्वलोक के माहिं भवन जिन जानिये।
लाख चौरासी सहस सत्यानव मानिये॥
तापै धरि तेईस जजौं शिर नायकै।
कंचन थाल मझार जलादिक लायकै॥

ॐ ह्रीं ऊर्ध्वलोकसम्बन्धी चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस श्री जिनचैत्यालयेभ्योऽर्घं।

वसुकोटि छप्पन लाख ऊपर, सहस सत्यानवे मानिये।
सत चारपै गिनले इक्यासी, भवन जिनवर जानिये॥
तिहूँलोक भीतर सासते, सुर असुर नर पूजा करैं।
तिन भवन को हम अर्घ लेकैं, पूजिहैं जग दुःख हरैं॥

ॐ ह्रीं तीन लोक सम्बन्धी आठ क्रोड़ि छप्पन लाख सत्यानवे हजार चार सौ इक्यासी अकृतित्रमजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

अब वरणों जयमालिका, सुनो भव्य चितलाय।
जिन-मन्दिर तिहुंलोक के, देहूँ सकल दरशाय॥

पद्धरी छन्द

जय अमल अनादि अनन्त जान, अनिमित जु अकीर्तम अचल थान।
जय अजय अखण्ड अरूप धार, षटद्रव्य नहीं दीसैं लगार॥२॥

जय निराकार अविकार होय, राजत अनन्त परदेश सोय।
जे शुद्ध सुगुण अवगाह पाय, दश दिशा मांहि इहविधि लखाय॥३॥

यह भेद अलोकाकाश जान, ता मध्य लोक नभ तीन मान।
स्वयमेव बन्यो अविचल अनन्त, अविनाशी अनादि जु कहत संत॥४॥

पुरूषाकार ठाड़ो निहार, कटि हाथ धारि द्वै पग पसार।
दक्षिण उत्तर दिशि सर्व ठोर, राजू जु सात भाख्यो निचोर॥५॥

जय पूर्व अपर दिश घाट बाधि, सुन कथन कहूं ताको जु साधि।
लखि श्वभ्रतलैं राजू जु सात, मधिलोक एक राजू रहात॥६॥

फिर ब्रह्मसुरग राजू जु पांच, भूसिद्ध एक राजू जु सांच।
दश चार ऊँच राजू गिनाय, षट द्रव्य लये चतुकोण पाय॥७॥

तसु बातवलय लपटाय तीन, इह निराधार लखियो प्रवीन।
त्रसनाड़ी तामधि जान खास, चतुकोन एक राजू जु व्यास॥८॥

राजू उतंग चौदह प्रमान, लखि स्वयं सिद्ध रचना महान।
तामध्य जीव त्रस आदि देय, निज थान पाय तिष्ठै भलेय॥९॥

लखि अधोभाग में श्वभ्रथान गिन सात कहे आगम प्रमान।
षट् थान माहि नारकि वसेय, इक श्वभ्रभाग फिर तीन भेय॥१०॥

तसु अधोभाग नारकि रहाय, फुनि ऊर्ध्वभाग द्वय थान पाय।
बस रहे भवन व्यन्तर जु देव, पुर हर्म्य छजै रचना स्वभेव॥११॥

तिंह थान गेह जिनराज भाख, गिन सात कोटि बहत्तरि जु लाख।
ते भवन नमों मन वचन काय, गति श्वभ्रहरण हारे लखाय॥१२॥

पुनि मध्यलोक गोला अकार, लखि दीप उदधि रचना विचार।
गिन असंख्यात भाखे जु सन्त, लखि संभुरण सबके जु अन्त॥१३॥

इक राजू व्यास में सर्व जान, मधिलोक तनों इह कथन मान।
सब मध्य द्वीपजम्बू गिनेय, त्रयदशम रूचिकवर नाम लेय॥१४॥

इन तेरह में जिन-धाम जान, शत चार अठावन है प्रमान।
खग देव असुर नर आय-आय, पद पूज जांय शिर नाय-नाय॥१५॥

जब ऊर्ध्व लोक सुर कल्पवास, तिह थान छजै जिन-भवन खास।
जय लाख चौरासी पर लखेय, जय सहससत्यानव और ठय ॥१६॥

जय बीस तीन फुनि जोड़ देय, जिन-भवन अकीर्तम जान लेय।
प्रतिभवन एक रचना कहाय, जिनबिम्ब एक शत आठ पाय॥१७॥

शत पंच धुनष उन्नत लसाय, पदमासनयुत वर ध्यान लाय।
शिर तीनछत्र शोभित विशाल, त्रय पादपीठ मणिजड़ित लाल॥१८॥

भामण्डल की छवि कौन गाय, फुनि चंवर दुरत चौसठि लखाय।
जय दुन्दुभिरव अद्भुत सुनाय, जय पुष्पवृष्टि गन्धोदकाय॥१९॥

जय तरु अशोक शोभा भलेय, मंगल विभूति राजत अमेय।
घट तूप छज मणिमाल पाय, घट धूम धूम दिग सर्व छाय॥२०॥

जय केतुपंक्ति सोहे महान, गन्धर्व देव गण करत गान।
सुर जनम लेत लखि अवधि पाय, तिहं थान प्रथम पूजन कराय॥२१॥

जिन गेह तणो वरणन अपार, हम तुच्छ बुद्धि किम लहत पार।
जय देव जिनेसुर जगत भूप, नमि 'नेम' मंगै निज देहु रूप॥२२॥

दोहा

तीन लोक मे सासते, श्रीजिन भवन विचार।
मनवचतन करि शुद्धता, पूजौं अरघ उतार॥

ॐ ह्रीं तीन लोक सम्बन्धी आठ क्रोड़ि छप्पन लाख सत्यानवें हजार चार सौ इक्यासी अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिहुं जग भीतर श्रीजिनमन्दिर, बने अकीर्तन अति सुखदाय।
नर सुर खग कर वन्दनीक, जे तिनको भविजन पाठ कराय॥
धनधान्यादिक सम्पत्ति तिनके, पुत्रपौत्र सुख होत भलाय।
चक्री सुर खग इन्द्र होयके, करम नाश शिवपुर सुख थाय॥

इत्याशीर्वादः।

अकृत्रिम चैत्यालयों का अर्घ

कृत्याकृत्रिम-चारु-चैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्।
वंदे भावन-व्यंतरान् द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान्।
सद्गन्धाक्षत-पुष्प-दाम-चरुकैः सद्दीपधूपैः फलै।
द्रव्यैर्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शांतये॥१॥

वर्षेषु वर्षान्तर-पर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु।
यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिन पुंगवानां॥२॥

अवनितल-गतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां, वन-भवन-गतानां दिव्य-वैभानिकानां।
इह मनुज-कृतानां देवराजार्चितानां, जिनवर निलयानां भावतोऽहं स्मरामि॥३॥

जंबू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा-क्षेत्र-त्रये ये भवाः, चन्द्रांभोज-शिखंडि-कण्ठ-कनक-प्रावृड्घना भाजिनाः॥
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा दग्धाष्ट-कर्मेन्धनाः, भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः॥४॥

श्री मन्मेरौ मुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मली जंबुवृक्षे, वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचिके कुण्डले मानुषांके।
इष्वाकारेऽजनाद्रौ दधिमुख-शिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके, ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भवन-महितले यानि चैत्यालयानि॥५॥

द्वौ कुंदेंदु-तुषार-हार-धवलौ द्वाविंद्रनील-प्रभौ, द्वौ बंधूक-सम-प्रभौं जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगप्रभौ।
शेषाः षोडश जन्म-मृत्यु-रहिताः संतप्त हेम-प्रभास्ते संज्ञान-दिवाकराः सुरनुताः सिद्धि प्रयच्छंतु नः॥६॥

ॐ ह्रीं त्रिलोक-संबंधि-कृत्याकृत्रिम-चैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इच्छामि-भंते ! चेइयभक्ति-काओसग्गो कओ तस्सालोचेऊं। अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि, ताणि सव्वाणि, तीसुवि लोएसु भवणवासियवाण-विंतरजोइसिय-कप्पवासियत्ति चउव्विहा देवाः सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धूवेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदमि णमस्सामि। अहिमवि इह सन्तो तत्थ संताइ णिच्चकालं अच्चमि पुज्जेमि वन्दामि णमंसामि। दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पपत्ति होउ मज्झं॥

अथ पौर्वाह्निक-माध्याह्निक-आपराह्निक देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं भावपूजा-वंदना-स्तव-समेतं श्री पंचमहागुरु-भक्ति-कायोत्सर्ग करोम्यहम्।

ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

(यहाँ पर नो बार णमोकार मंत्र जपना चाहिए)